विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P5: भाषाविज्ञान**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M1: भाषा की परिभाषा और स्वरूप**
इकाई टैग	**HND_P5_M1**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com
इकाई-लेखक	**डॉ. राजमणि शर्मा** पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ई-मेल: rajmani.sharma@rediffmail.com
इकाई समीक्षक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com
भाषा संपादक	**डॉ. उमाशंकर उपाध्याय** पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : usupadhyay@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. भाषा की परिभाषा
4. भाषा का स्वरूप
5. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित बिंदुओं से परिचित हो सकेंगे -

- भाषा के व्यक्ति, समाज एवं सभ्यता से परस्पर संबंध से परिचित हो सकेंगे,
- भाषा प्रयोग है, साधन है, या साध्य है? आप इसे जान सकेंगे,
- भाषा के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से परिचित हो सकेंगे,
- भाषा की परिभाषा और भाषा का स्वरुप से परिचित हो सकेंगे,

2. प्रस्तावना

(1) भाषा: व्यक्ति, समाज एवं सभ्यता

भाषा मानव-व्यवहार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जन्म लेते ही मनुष्य को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की आवश्यकता महसूस होती है। शिशुकाल के प्रारंभिक दिनों में वह रो कर, चीख कर अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त करता है किंतु, आगे चलकर जब वह वस्तु और पदार्थ का बोध प्राप्त करता है तो अपने परिवार में व्यवहृत भाषा की ध्वनियों के उच्चारण द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने लगता है। वस्तुतः शिशु के भाषा-व्यवहार और भाषा-अर्जन की शृंखला - ध्वनि उच्चारण- शब्द- शब्दयुग्म उच्चारण- वाक्य प्रयोग- भाषा-विकास एवं निर्माण का परिचायक है। विकास के साथ उसकी भाषा समृद्ध होती जाती है। इस समृद्धि में उसके परिवेश और परिस्थिति का बहुत बड़ा अवदान होता है। यद्यपि उस शिशु की भाषा यहीं पूर्ण नहीं होती। वस्तुतः जैसे-जैसे वह अपने परिवार के साथ-साथ अपने भाषिक समुदाय से जुड़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी भाषा और समृद्ध होती जाती है।

परिवार भाषा की पहली पाठशाला है। परिवार सामाजिक प्रक्रिया का एक छोटा रूप है। मूल रूप से मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव में उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास संभव नहीं। सच तो यह है कि व्यक्ति के सामाजिक जीवन के विकास का मुख्य आधार भी भाषा ही है, जबकि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीवों में सामाजिक जीवन के अभाव का कारण भाषा-शक्ति का अभाव ही है। स्पष्ट है कि भाषा ही मानव-समुदाय को पशु से अलगाती है।

मानवीय सामाजिक जीवन या मानव सभ्यता मूल रूप से अनुभूतियों के आदान-प्रदान पर आधृत है। यह विनिमय दो प्रकार से संभव है। एक स्थूल क्रियाओं (खाना-पीना, उठना-बैठना) के अनुकरण द्वारा और दूसरा- भाषा माध्यम द्वारा। स्थूल-क्रियाओं का अनुकरण तो आसान और संभव है किन्तु इच्छा, विचारों, विश्वासों, भावनाओं आदि जैसी सूक्ष्म क्रियाओं का अनुकरण संभव नहीं है। इन्हें समाज में रहकर अर्जित करना पड़ता है। यह कहना अनावश्यक है कि मानव सभ्यता का प्राण अथवा आत्मा ये सूक्ष्म बातें ही हैं और इन सूक्ष्म बातों के ग्रहण तथा अभिव्यक्ति का एकमात्र अकेला माध्यम है- 'भाषा'।

(2) भाषा: प्रयोग, साधन और साध्य

अपनी भाषा का प्रयोग इतना सहज और स्वाभाविक है कि वह उसकी संरचना-प्रक्रिया एवं क्रिया-विधि की ओर ध्यान ही नहीं देता। इसका मुख्य कारण है व्यक्ति की अपनी भाषा संबंधी सूक्ष्म जानकारी के प्रति उदासीनता। वस्तुतः व्यक्ति का संबंध भाषा-प्रयोग से रहता है, भाषा-संबंधी जानकारी से नहीं। किंतु हमारे बीच शिक्षकों, लेखकों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों, संचार-अभियंताओं आदि के ऐसे अनेक वर्ग हैं जिनके लिए भाषा-संबंधी

जानकारी, भाषा-प्रयोग के समान या उससे भी अधिक उपयोगी है। भाषा इनके लिए साधन है। एक और वर्ग हमारे बीच है, जिसके लिए भाषा, साधन से बढ़कर साध्य है। वह भाषा की आंतरिक संरचना की जानकारी के लिए उसका अध्ययन करता है। ऐसे लोगों को ही भाषाशास्त्री या भाषावैज्ञानिक कहा जाता है। उसका साध्य रूप में विवेचन अध्ययन के कारण भाषाशास्त्र या भाषाविज्ञान, ज्ञान-विज्ञान की एक शाखा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

(3) भाषा का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

भाषा क्या है? इस प्रश्न का सीधा एवं प्रचलित उत्तर यही है कि- "भाषा, मानव-समूह के परस्पर विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।" किन्तु विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा नहीं है। ऐसे अनगिनत साधन हैं, जिनसे वह भावों की अभिव्यक्ति और विचारों का आदान-प्रदान करता है। अंग-प्रत्यंगों के प्रयोग द्वारा भी भावों की अभिव्यक्ति और विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है। गार्ड की झंडी, इंजन की सीटी, चौराहे की लाल बत्ती, फैक्ट्री का भोंपू, पुलिस की गाड़ी का सायरन, चौराहों पर सिपाही के उठते-गिरते हाथ आदि सभी तो भावों की अभिव्यक्ति के साधन हैं। यदि भावों की अभिव्यक्तियों एवं विचारों के आदान-प्रदान के उपर्युक्त सभी माध्यमों का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें वैज्ञानिकता की संज्ञा नहीं दी जा सकती। चूँकि भाषा का अध्ययन विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है, अतः संकेत या क्रिया रूप में प्रयुक्त भावाभिव्यक्ति के साधनों को बहिष्कृत कर शेष बचे साधनों का ही अध्ययन करना होगा। वैसे, इनका बहिष्कार या ग्रहण आसान नहीं। यह प्रमाणित सत्य है कि किसी भी विषय का वैज्ञानिक अध्ययन तभी संभव है जब उसका क्षेत्र निश्चित हो और क्षेत्र तभी निश्चित हो सकता है, जब उसकी सीमाएँ निर्धारित हों। अतः भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन उसे असीमित बनाकर नहीं, सीमित करके ही संभव है।

सुनिश्चित उद्देश्य एवं सुनिश्चित अध्ययन-पद्धति के कारण भाषा की दो सीमाएँ निर्धारित की गई हैं: पहली- मानवीयता और दूसरी कथ्यता। पहली सीमा के कारण भाषाविज्ञान में केवल मानव भाषा का ही अध्ययन होता है और दूसरी सीमा के कारण विचार-विनिमय एवं भावों की अभिव्यक्ति के केवल उस साधन को ही भाषा माना जाता है, जिसमें कथन की क्रिया हो।

वस्तुतः भाषा का वास्तविक रूप कथ्य-रूप ही है। विचार-विनिमय की अन्य पद्धतियाँ भाषा के कथ्य-रूप का ही रूपांतर या संक्षिप्तीकरण हैं। इस संक्षिप्तीकरण के पीछे मूल रूप में भाषा ही विद्यमान है।

3. भाषा की परिभाषा

अस्तु भाषा को परिभाषित करते समय निम्नलिखित बातों को भुलाया नहीं जा सकता है-

- प्रयोक्ता के विचार आदि को श्रोता या पाठक तक पहुँचाने का कार्य करने के कारण- भाषा विचार-संचार या संप्रेषण का माध्यम है।
- 'भाषा' का संबंध मानव-समुदाय विशेष से होता है, जिसमें वह बोली और समझी जाती है।
- 'भाषा' मानव-मुख-विवर में स्थित उच्चारण अवयवों द्वारा उच्चरित स्वनों का समूह है।
- 'भाषा' विशेष के निश्चित मान्यक्रम में उच्चरित यादृच्छिक स्वनों का समूह भाषा है। अर्थात् स्वन-समूहों का विचारों या भावों से कोई सहजात संबंध नहीं होता। यह संबंध यादृच्छिक या माना हुआ होता है। इसलिए भाषा में यादृच्छिक स्वन-प्रतीक होते हैं।
- भाषा एक व्यवस्था है जिसमें उसके सभी अंग मिलकर कार्य करते हैं।

अब तक के प्रमुख भाषावैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं को उपर्युक्त कसौटी पर परख लेना आवश्यक है-

प्लेटो ने 'सोफिस्ट' में विचार और भाषा के संबंध में लिखते हुए कहा कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। "विचार आत्मा की मूल या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होंठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।" **'स्वीट'** के अनुसार "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।" **प्रो. पी.डी. गुणे** का विचार है कि "ध्वन्यात्मक शब्दों, हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है।" **जेस्परसन** के अनुसार "मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपना विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुतः विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरन्तर उपयोग करता है। इस प्रकार के कार्य-कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"

वान्द्रिए के विचार से "भाषा एक प्रकार का चिह्न है। चिह्न से तात्पर्य उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मनुष्य अपना विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक भी कई प्रकार के होते हैं। जैसे नेत्र-ग्राह्य, श्रोत्र-ग्राह्य एवं स्पर्श-ग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोत्र-ग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।" **बाबूराम सक्सेना** के मत से- "जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उन्हें भाषा कहते हैं।" **सुकुमार सेन** के अनुसार- "अर्थवान् कंठोद्गीर्ण ध्वनि-समष्टि भाषा है।" **प्रो. राजमणि शर्मा** के अनुसार- "मानव समुदाय द्वारा उच्चरित स्वन संकेतों की वह यादृच्छिक प्रतीकात्मक व्यवस्था भाषा है, जिसके द्वारा विचारात्मक स्तर पर मानव समुदाय-विशेष परस्पर संपर्क स्थापित करता है।"

ब्लाक तथा **ट्रेगर** के अनुसार- "A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society group cooperates." **स्टर्टवेंट** के विचार से "A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperate and interact." **इन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** में भी लिखा है कि- "Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which humans interact and communicate"

4. भाषा का स्वरूप

भाषा का स्वत्त्व, गुण, धर्म और वैशिष्ट्य ही भाषा का स्वरूप है।

(क) मौखिक श्रव्य सरणि (Vocal Auditory Channel)

मनुष्य अपने भाव/संदेश स्वन रूप में श्रोता/ग्राहक तक पहुँचाता है। भाषा का लिखित रूप स्वन पर आधारित होता है। भाषा के लिखित रूप को अपनाने वाला व्यक्ति उसका उच्चरित रूप अवश्य जानता है। भाषा वाच्य-स्वनों की एक सफल एवं विकासोन्मुख व्यवस्था है, जिसके माध्यम से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों एवं विचारों का संप्रेषण संभव है। यथा- चल, पल, टल। तीनों रूप अलग भाव के द्योतक हैं।

(ख) यादृच्छिक ध्वनि प्रतीक

ध्वनि और अर्थ के परस्पर संबंध से उभरने वाली संकल्पना को ध्वनि प्रतीक कहा जाता है। वस्तुतः ध्वनि सुनने के पश्चात् जो बिंबात्मक (चित्रात्मक) संकल्पना मानव मस्तिष्क में उभरती है, वह प्रतीक है। ऐसी संकल्पना में ध्वनि ही सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। यह संकल्पित रूप या नाम पहले एक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त होता है, फिर उसे

समाज की स्वीकृति मिलती है। इस संकल्पना में कुछ ध्वनियों का क्रमिक प्रयोग किया जाता है। कालांतर में यह ध्वनिक्रम उस भाषा-समाज (समुदाय) में सर्वमान्य हो जाता है। अर्थ अभिव्यक्ति की यह संकल्पना पूरी यादृच्छिक होती है; अर्थात् उसी भाषा में अर्थ ग्राह्य है, दूसरी भाषा में वह क्रम अर्थहीन होता है। यथा- **हिंदी-घर, अंग्रेजी-होम (Home) हिंदी-गाय, अंग्रेजी-काऊ (Cow)।** तात्पर्य यह कि क्रमबद्धता भाषा-विशेष में मान्य है, न कि दूसरी भाषा के लिए। या यों कह सकते हैं कि स्वनों का मान्यक्रम हर भाषा का अपना वैशिष्ट्य है।

यहाँ यह स्पष्ट है कि यादृच्छिकता भाषा-समुदाय स्तर पर होती है। वह वैयक्तिक नहीं है, साथ ही दूसरे भाषा-समाज के लिए भी उपयोगी नहीं। उपर्युक्त शब्द- घर, गाय हिंदी में जिस वस्तु, पशु के लिए प्रतीक हैं अंग्रेजी में नहीं, वहाँ उनका दूसरा ध्वनिक्रम है। एक बात और स्वन प्रतीक (मोटे रूप में शब्द) एवं तत्संबंधी आशय में कोई तात्विक अथवा तार्किक संबंध नहीं होता है। उदाहरण के लिए पशु विशेष के लिए प्रयुक्त 'गाय' शब्द, स्वन प्रतीक से अभिव्यक्त किया जाता है। उस वास्तविक पशु एवं 'गाय' शब्द में कोई सहजात अथवा तार्किक संबंध नहीं है। अर्थात् यह अनिवार्य नहीं है कि इस जीव के लिए केवल इस इस शब्द-विशेष का ही प्रयोग हो। अन्य किसी भी शब्द का इस पशु के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह मात्र एक ऐतिहासिक संयोग है कि एक विशेष-समुदाय के व्यक्ति इस पशु विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं। स्वन प्रतीक एवं उससे सम्बद्ध आशय का संबंध रूढ अथवा परंपरागत होता है। यदि प्रतीकों में यादृच्छिकता का गुण न होता- अर्थात् एक विशेष आशय एक ही विशेष स्वन प्रतीक से अभिव्यक्त होता तो संसार में एक भाषा होती, किंतु संसार भाषा की विभिन्नता के लिए प्रसिद्ध है।

(ग) क्रमबद्धता

भाषा का प्रधान कार्य है- विचार-विनिमय। विचार-विनिमय या अर्थ की अभिव्यक्ति एक स्वन से नहीं अपितु स्वनों के समूह से होती है। जब एक या एक से अधिक स्वन विशिष्ट योग या समष्टि बनाते हैं तभी उनसे विचार-विनिमय का कार्य अथवा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। विशिष्ट योग से तात्पर्य उस योग से है जो प्रयोक्ता की भाषा में स्वीकृत है। यह आवश्यक नहीं कि दूसरी भाषा में भी वह योग उसी अर्थ में मान्य हो। यथा- 'कजरल' ('क', 'ज', 'र', 'ल') स्वन-समूह किसी अर्थ की अभिव्यक्ति में असमर्थ है, किंतु कुछ उलट-फेर के साथ बनाए गये इन स्वनों के योग- 'जल', 'कर' से एक विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। एक और उदाहरण लें- 'क' और 'ल' ध्वनियाँ समूह में नहीं, इसलिए निरर्थक हैं, इन्हें हम समूह में रखें तो रूप होगा- 'कल'। और, यह स्वन-समूह सार्थक है- भाषा-विशेष में। इसे यदि उलट दें- 'लक' तो यह समूह अंग्रेजी में सार्थक हो जाएगा। किंतु 'कल' और 'लक' के अर्थ भिन्न हैं। अतः यह भाषाविज्ञान के सिद्धांत को पुष्ट करता है कि हर भाषा का अपना अलग मान्यक्रम होता है। उसके मान्यक्रम में प्रयुक्त होने पर ही स्वन सार्थक योग बना सकते हैं और तभी विचार-विनिमय का कार्य संपन्न होगा।

(घ) व्यवस्था

भाषा एक व्यवस्था है। भाषा यदि व्यवस्था न होती तो अपने भाषिक समुदाय के एकाधिक या सभी व्यक्तियों द्वारा एक जैसा प्रयोग न हो पाता और न ही वैज्ञानिक-पद्धति आधृत भाषा अध्ययन संभव हो पाता। भाषा की निश्चित व्यवस्था ने ही उसका मशीनी प्रयोग एवं अध्ययन संभव बनाया।

एक कार्य में संलग्न विभिन्न अंगों के पारस्परिक संबंधों को ही व्यवस्था कहा जाता है। भाषा की व्यवस्था से तात्पर्य भाषा के विभिन्न अंगों- स्वन, रूपिम/शब्द, वाक्य और अर्थ की एक निश्चित रूप में क्रियाशीलता/ सृजनात्मकता से है। हर भाषा की व्यवस्था दूसरी भाषा की व्यवस्था से भिन्न होती है। यथा- निम्नलिखित संरचना देखिए।

हिंदी- लड़का पुस्तक पढ़ता है। **अंग्रेजी** - Boy reads book.
लड़की पुस्तक पढ़ती है। - Girl reads book.

यहाँ ध्यातव्य है- (1) कर्म 'पुस्तक' का प्रयोग हिंदी में क्रिया के पूर्व किया गया है। (2) हिंदी में कर्ता- लड़का और लड़की, एक मूल से व्युत्पन्न हैं- लड़क्+आ (पु.), लड़क्+ई (स्त्री लिंग) जबकि अंग्रेजी में लड़का के लिए Boy शब्द है और लड़की के लिए अलग- Girl शब्द है। दोनों के शब्द मूल भी भिन्न हैं। (3) हिंदी में लिंग परिवर्तन का प्रभाव क्रिया पर पड़ता है, जबकि अंग्रेजी में क्रिया अप्रभावित है। वचन, लिंग, प्रत्यय, उपसर्ग आदि के स्वरूप और प्रयोग में भी यह भिन्नता एक से दूसरी भाषा में दिखाई देती है। कतिपय व्यवस्थाओं में समानता भी दिखाई देती है, यथा- पुरुष (अन्य, मध्यम, उत्तम) व्यवस्था में हिंदी, संस्कृत अंग्रेजी समान है।

(ड.) सामाजिक संस्था और व्यवहार

भाषा सामाजिक संस्था या सामाजिक व्यवहार है। भाषा अमूर्त एवं स्थायी होती है। अर्थात् न तो भाषा को देखा जा सकता है और न ही भाषाविहीन समाज की संकल्पना की जा सकती है और मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है। भाषा मानवीय संस्कृति, सभ्यता और सामाजिकता का मूलाधार है। एक समुदाय में विभिन्न सदस्यों के आपसी सम्बन्धों की निकटता और परस्पर विचार-विनिमय के कारण एक भाषा का प्रयोग होता है। भाषा-समुदाय का क्षेत्र-विस्तार/भाषिक-समुदाय, प्रदेश, राष्ट्र से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक हो सकता है। इस माध्यम से उसकी संस्कृति का प्रचार भी होता है और दूसरी संस्कृति का ग्रहण भी। वस्तुतः भाषा में सांस्कृतिक हस्तांतरण की शक्ति है।

(च) परस्पर विचार-विनिमय (Interchangeability)

भाषा का मुख्य गुण है- संप्रेषणीयता। मानव भाषा के माध्यम से चिंतन और मनन के साथ अपने विचारों को दूसरों तक सफलता के साथ पहुँचा पाता है। वस्तुतः भाव-अभिव्यक्ति या विचार आदान-प्रदान की विभिन्न मानवीय व्यवस्थाओं में भाषा-व्यवस्था सर्वाधिक प्रभावशाली और सफल माध्यम है। भावाभिव्यक्ति के अन्य माध्यम मुख्यतः- संकेत-एक सीमा तक ही कार्य कर पाते हैं, जिसके कारण सूक्ष्म तथा मौलिक अभिव्यक्ति संभव नहीं होती है। चौराहे की लाल हरी बत्ती होने, मंदिर की घंटी बजने से संकेत का ज्ञान होता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है। विचार-विनिमय भाषा द्वारा संपर्क स्थापित करने का माध्यम तो है, किंतु हर स्थिति में अनिवार्य नहीं। यथा- वक्ता के भाषण के समय श्रोता बैठे सुनता भर है। इस स्थिति में वक्ता-श्रोता के मध्य मात्र संपर्क स्थापित होता है, किसी प्रकार का विचार-विनिमय नहीं। अतः ऐसा व्यवहार जिससे कोई तात्कालिक एवं प्रत्यक्ष संपर्क न भी स्थापित होता हो लेकिन जिस व्यवहार में संपर्क स्थापित करने की क्षमता हो, उसे भाषा कहा जाएगा। यहाँ संपर्क का अर्थ एक से अधिक व्यक्तियों के मध्य बौद्धिक संबंध से है। और, भाषिक धरातल पर एक से अधिक परस्पर जुड़े 'व्यक्ति-समाज' कहलाते हैं। अतः संपर्क सदैव सामाजिक स्थिति का द्योतक है।

(छ) अर्जित एवं अनुकृत व्यवहार

बोलने अथवा वाणी की शक्ति तो प्रकृति-प्रदत्त है, किंतु भाषा तो उस शक्ति द्वारा संपादित क्रिया है, एक अर्जित व्यवहार है। बालक बिना सीखे नहीं बोल सकता। तात्पर्य यह कि भाषा प्रकृति-प्रदत्त या जन्मजात वस्तु नहीं, वह समाज में रहकर सीखी एवं प्राप्त की हुई वस्तु है।

वस्तुतः भाषा-अर्जन का एक प्रमुख आधार है- अनुकरण। अनुकरण की दोनों विधियाँ-सायास या अनायास का उपयोग भाषा-सीखने में होता है। मातृभाषा सीखने में सायास से अधिक अनायास विधि सहायक होती है। बच्चे के भाषा-ज्ञान का विकास इसका उदाहरण है।

यह सच है कि कुछ भाषाओं को सीखने में बौद्धिकता का सहारा लिया जाता है किंतु अपनी मातृभाषा या अन्य भाषाओं के सीखने में अनुकरण के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। भाषा का सही उच्चारण अनुकरण द्वारा ही सीखा जा सकता है और अनुकरण के चक्र में फँसी भाषा निरंतर बदलती रहती है। उसका उच्चारण भी बदलता है, भाषा-संरचना भी और अर्थ भी। फलस्वरूप भाषा की प्रकृति-परिवर्तनशीलता है।

(ज) विविक्तता (Discreteness)

मानव भाषा में जिन स्वनों का प्रयोग किया जाता है, उनमें सामान्य रूप से अविच्छिन्न प्रवाह दिखाई देता है। भाषा के स्वन-प्रवाह पर सूक्ष्म चिंतन से उसमें कई इकाइयाँ सामने आती हैं। स्वन-प्रवाह में यदि एकाधिक वाक्यों का अस्तित्व मिलता है या वाक्य में एकाधिक शब्द मिलते हैं, तो शब्द में एकाधिक स्वनिम मिलते हैं। इस प्रकार मानव की भाषा में विभिन्न इकाइयों की विवक्त स्थिति का अभिलक्षण दिखाई देता है।

(झ) द्वित्व अभिरचना (Duality of Patterns)

मानव भाषा के विश्लेषण से उसमें एक साथ दो इकाइयों की भूमिका का ज्ञान होता है। इसमें पहली इकाई यदि स्वन से संबंधित होती है; तो दूसरी अर्थ से। पहली इकाई स्वन-स्तर की है जिसे स्वनिम कहते हैं; दूसरी इकाई अर्थभेद उत्पन्न करती है। जैसे- 'कार' और 'तार' में 'क्' और 'त्' स्वतंत्र स्वनिम हैं (स्वनिक स्तर पर), परंतु यही परिवर्तन रुपिम-स्तर पर अर्थभेद उत्पन्न करते हैं।

(ञ) अधिगम्यता (Learnability)

मानव भाषा अर्जन और अभ्यास-प्रक्रिया पर आधारित होती है। मनुष्य यदि सहज रूप से मातृभाषा सीख लेता है, तो प्रयत्न करके किसी दूसरी भाषा को भी सीख सकता है। इससे स्पष्ट है कि भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है।

(ट) नियमनशीलता और सरलतागामी प्रवृत्ति

भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति सतत अनियमित से नियमित होने की है। इसका तात्पर्य यह कि प्रारंभ में भाषा अनियंत्रित होती है, उसमें जितने नियम होते हैं, उतने ही अपवाद। परंतु समय एवं उसके प्रयोग के साथ-साथ भाषा नियमित होती जाती है। और, सरलतागामी प्रवृत्ति का तात्पर्य है, कठिन से सरलता की ओर उन्मुखता। हिंदी तत्सम शब्दों का तद्भवीकरण इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। यथा- अक्षि-आँख, हस्त-हाथ, कर्ण-कान आदि।

5. निष्कर्ष:

- भाषा मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसकी अनुभूति हमारी साँसों और हर क्रिया में समाई रहती है। भाषा का ज्ञान मनुष्य को पशु से अलगाता है।

- भाषा एक सामाजिक व्यवस्था और व्यवहार है। भाषा का प्रयोग समाज के भीतर अपने भाव-ज्ञान की अभिव्यक्ति और परस्पर विचार-विनिमय का माध्यम है।
- मुख में स्थित उच्चारण अवयवों के सहयोग से भाषा के मान्यक्रम में निःसृत स्वनों के यादृच्छिक और प्रतीकात्मक युग्म भाषा संरचना के आधार हैं।
- भाषा के रचनात्मक स्वरूप से तात्पर्य-स्वन, स्वनिम, रूप, रूपिम-शब्द, वाक्य आदि की निर्मिति या गठन में प्रभावी भूमिका निभाने वाले तत्त्वों से है।